राष्ट्रवाद के प्रतिमान
पंडित दीनदयाल उपाध्याय

▫ डॉ. सौरभ मालवीय
▫ डॉ. रामशंकर

सारांश :- पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक राष्ट्रवादी चिंतक के रूप में जाने जाते हैं। आपने एकात्म मानववाद के रूप में अपने विचारों की व्याख्या की तथा एक राष्ट्रवादी दर्शन के रूप में इसे स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने एकात्म मानववाद दर्शन को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। वे न केवल वैचारिक चुनौतियों के प्रति सजग थे परन्तु उन चुनौतियों का सामना राष्ट्रवाद के माध्यम से करने को दृष्ट संकल्प भी प्रतीत होते हैं। भारत जैसा विशाल एवं सर्वसाधन सम्पन्न राष्ट्र जिसने अपनी ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर सम्पूर्ण विश्व को अपने ज्ञान पुंज से आलोकित कर मानवता का पाठ पढ़ाया तथा विश्व में जगतगुरू के पद पर प्रतिस्थापित हुआ, ऐसे विशाल राष्ट्र के पराधीनता के कारणों पर दीनदयाल जी का विचार और स्वाधीनता पश्चात् समर्थ और सशक्त भारत बनाने में उनके विचार प्रेरणास्पद हैं।

महत्वपूर्ण शब्द :- राष्ट्रवादी चिंतक, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, नई रणनीति, प्रजातंत्र, मानववाद, राजनैतिक आध्यात्मीकरण, एकात्मता, द्विसंस्कृतिवाद, राष्ट्रजीवन, सामाजिक मूल्य

प्रस्तावना

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय लोकतंत्र के उन पुरोधाओं में से एक हैं, जिन्होंने राष्ट्र की उदारता और भारतीय स्वरूप को गढ़ा तथा इसकी निर्मिति की है। भारतीय राजनीति में सत्ता की लोलुपता के उद्देश्य को लेकर प्रवेश नहीं किया। वर्ष 1964 में राजस्थान में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ग्रीष्मकालीन संघ शिक्षा वर्ग उदयपुर में अपने उद्‌बोधन में उन्होंने कहा कि 'स्वयंसेवक को राजनीति से अलिप्त रहना चाहिए, जैसे कि मैं हूँ।' स्वयं सेवकों ने पूछा कि आप एक राजनीतिक दल के अखिल भारतीय महामंत्री हैं फिर आप राजनीति से अलिप्त कैसे हैं? उन्होंने कहा कि 'मैं राजनीति के लिए राजनीति में नहीं हूं, वरन् मैं राजनीति में संस्कृति का राजदूत हूँ।' इस भाव से उनके राजनीतिक जीवन में राष्ट्र का सांस्कृतिक प्रेम परिलक्षित होता है। एकात्म मानववाद के अग्रदूत पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजनीति में भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के प्रतिनिधि थे। राजनीति उनके लिए साध्य नहीं, समाज सेवा का साधन मात्र थी। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा है कि''वह राजनीति का आध्यात्मीकरण चाहते थे. उनकी आस्थाएं प्राचीन अक्षय राष्ट्र जीवन की जोड़ा करती थीं, किंतु वह रूढ़िवादी नहीं थे।'

राष्ट्र की सांस्कृतिक स्वतंत्रता तो अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि संस्कृति ही राष्ट्र के संपूर्ण शरीर में प्राणों के समान संचार करती है। प्रकृति के तत्वों

▫ सहायक प्राध्यापक, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय भोपाल (नोएडा परिसर)
▫ अतिथि अध्यापक, मा.च. रा.प.एवं सं वि.वि., नोएडा परिसर ईमेल - ramshankarpal108@gmail.com

पर विलय पाने के प्रयत्न में तथा मानवानुभूति की कल्पना में मानव जिस जीवन दृष्टि की रचना करता है वह उसकी संस्कृति है। संस्कृति कभी गतिहीन नहीं होती अपितु वह निरंतर गतिशील है फिर भी उसका अपना एक अस्तित्व है। नदी के प्रवाह की भाँति निरंतर गतिशील होते हुए भी वह अपनी निजी विशेषताएँ रखती हैं जो उस सांस्कृतिक दृष्टिकोण को उत्पन्न करनेवाले समाज के संस्कारों में तथा उस सांस्कृतिक भावना से जन्य राष्ट्र के साहित्य, कलाए दर्शन, स्मृति, समाज रचना इतिहास एवं सभ्यता के विभिन्न अंग अंगों में व्यक्त होती हैं। परतंत्रता के काल में इन सब पर प्रभाव पड़ जाता है तथा स्वाभाविक प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। आज स्वतंत्र होने पर आवश्यक है कि हमारे प्रवाह की संपूर्ण बाधाएँ दूर हों तथा हम अपनी प्रतिभा अनुरूप राष्ट्र के संपूर्ण क्षेत्रों में विकास कर सकें। राष्ट्र भक्ति की भावना को निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय भी राष्ट्र की संस्कृति को ही है तथा वही राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर मानव की एकात्मता का अनुभव कराती है। अतः संस्कृति की स्वतंत्रता परमावश्यक है। बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही नहीं, टिकाऊ भी नहीं रह सकेगी। इस अध्ययन में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के राष्ट्रीय चिंतन के आध्यात्मिक पक्ष को उद्धृत किया गया है।

साहित्य का पुनरावलोकन

1. राष्ट्रवाद पर आधारित प्रमुख साहित्य, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर के शोध पत्र एवं आलेखों का अध्ययन,
2. राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रवाद के लेखन से जुड़े चर्चित ख्यातिलब्ध विद्वानों एवं साहित्यकारों द्वारा राष्ट्रीय अस्मिता की वैविध्य उपादेयता तथा व्यापक समाज में आधुनिक चिंतन की उपादेयता के आलोक में रचित संस्थागत, विभागीय एवं अकादमिक साहित्य का अध्ययन,
3. राष्ट्रीय व्याख्यानों तथा संगोष्ठियों पर आधारित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों आदि का अध्ययन।

उद्देश्य

1. राष्ट्रवाद की प्रमुख अवधारणाओं का अध्ययन
2. राष्ट्रवाद के अंतर्गत पंडित दीन दयाल उपाध्याय के राजनैतिक चिंतन का अध्ययन।

विश्लेषण एवं विवेचना

राष्ट्रवाद क्या है ?

शाब्दिक तौर पर राष्ट्रवाद एक आधुनिक 'पद' है। ऐसा माना जाता है कि आधुनिक राष्ट्र-राज्य की अवधारणा फ्रांस की क्रांति (1789) के बाद विकसित हुई। सामाजिक विकास या राजनैतिक सिद्धांत के तौर पर राष्ट्रवाद की संकल्पना आधुनिकता की ऐतिहासिक व्याख्या हो सकती है, लेकिन मूल स्वीकार्य बात यह है कि राष्ट्रों का अस्तित्व प्राचीन काल से था।

राष्ट्रवाद पर अधिक लिखने वाले राजनैतिक विचारक एंथोनी डी. स्मिथ ने राष्ट्र को परिभाषित किया है कि- 'मानव समुदाय जिनकी अपनी मातृभूमि हो, जिनकी समान गाथाएं और इतिहास एक जैसा हो, समान संस्कृति हो, अर्थव्यवस्था एक हो और सभी सदस्यों के अधिकार व कर्तव्य समान हों।'

रूपर्ट इमर्सन के अनुसार राष्ट्रवाद- 'एक संबद्ध समुदाय जिसकी विरासत समान हों और जो एक जैसा भविष्य पसंद करते हैं।'

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर 'गुरूजी' ने राष्ट्र-जन के विभिन्न घटकों का उल्लेख किया है कि- समान इतिहास, समान परंपरा,

शत्रु-मित्रता का भाव समान, भविष्य की आकांक्षा समान ऐसी भूमि का पुत्र संबंध समाज राष्ट्र कहलाता है।

फ्रांसीसी लेखक अर्नेस्ट रेनन (1882) के अनुसार- 'आधुनिक राष्ट्र केंद्राभिमुख घटकों की ऐतिहासिक परिणति है।' एक जैसा अतीत गौरव, वर्तमान की एक समान इच्छा तथा एक साथ महान कार्य के निष्पादन व उसे बेहतर करने की इच्छा, ये सभी घटक 'जन' बनने की आवश्यक शर्त है और ऐसे 'जन' की आत्मा राष्ट्र है।

हालांकि, जब हम विश्व के इतिहास पर नजर डालते हैं, तो बहुत कुछ यह राजवंशों व साम्राज्य का इतिहास मिलता है। हम स्वतंत्र संप्रभु राजनैतिक इकाई के रूप से राष्ट्र नहीं पाते। हालांकि राष्ट्र, सांस्कृतिक अस्तित्व के रूप में नहीं रहा, लेकिन पिछले पांच सौ सालों के दौरान इसका अस्तित्व स्वीकार किया जाने लगा।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवाद

आधुनिक राष्ट्रवाद फ्रांस की क्रांति के बाद विकसित हुआ, जहां राजनैतिक इकाई के रूप में फ्रांस राष्ट्र-राज्य का उदय स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे स्पष्ट राजनीतिक सिद्धांतों पर हुआ। राष्ट्रवाद पर संपूर्ण चिंतन राष्ट्र का एक राजनैतिक इकाई के रूप में मानने लगा। यह दृष्टिकोण, राष्ट्र/राज्य को आधुनिक इतिहास का उत्पाद कहने लगा। राज्य के उदय से पहले राष्ट्रों के अस्तित्व को केवल जातीय ग्रुपों के रूप में माना गया। इस पर भी जोर दिया गया कि विश्व के अधिकांश राष्ट्र बहु-जातीय राष्ट्र हैं और इन्हें सोशल नेशंस के रूप में माना गया।

इन परिस्थितियों में नागरिकता को राष्ट्रीयता के बराबर माना जाता है, लेकिन यहां मूलभूत अंतर है। जब कोई राष्ट्रीय समुदाय के अंग के रूप में अपनी राष्ट्रीयता प्राप्त करता है, तो वह इसे जन्मजात प्राप्त करता है। यह एक सामाजिक-राजनैतिक दर्जा है। वहीं दूसरी तरफ नागरिकता कानूनी प्रक्रिया के तहत सरकार के जरिए हासिल की जाती है। जन्मजात नागरिकता मुल्क के कानूनी प्रावधानों से ही संभव है। इस प्रकार यह राजनैतिक-विधिक दर्जा है। लेकिन आज के राष्ट्र-राज्य के दौर में दोनों 'शब्द' एक ही अर्थ में प्रयुक्त किए जाते हैं।

संपूर्ण आधुनिक चिंतन इस दिशा में है कि केवल राष्ट्र-राज्य ही राष्ट्र हैं। संयुक्त राष्ट्र, 1945 का चार्टर सरकारों के समझौतों पर आधारित दस्तावेज है। बाद के सभी चार्टर या परिपाटी सदस्य राज्यों या सहमत सरकारों द्वारा स्वीकार किए गए। इस दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में राज्यों का हम एक रोचक वर्गीकरण एडीटर Leo Suryadinata द्वारा पुस्तक 'Nationalism and Globalization East and west' में पाते हैं- चीन, भारत और जापान को प्राचीन राज्य व आधुनिक राष्ट्र के रूप में वर्गीकृत करते समय वर्गीकरण का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है, जबकि वास्तविक वर्गीकरण इस प्रकार है, ये सभी प्राचीन राष्ट्र व नए राज्य हैं।

'भारत की संस्कृति चिरंतन है, जो 5000 वर्षों से भी अधिक पहले विकसित हुई। इसने आने वाली भारतीय पीढ़ियों के मानसिक क्षितिज, मूल्य व्यवस्था और जीवन शैली को विकसित किया, जो आज भी अनेक विदेशी आक्रांताओं व विपुल जनसंख्या विस्तार के बाद आश्चर्यजनक रूप से बरकरार है। यह आज भी भारतीयों व भारत के मूल लोगों को एक अलग व्यक्तित्व प्रदान करती है, जैसा कि पहले देती आई है।'

पुस्तक 'कल्चर एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया में आर.सी. अग्रवाल' ने उद्धृत किया है कि- सर्वोच्च न्यायालय ने डॉ. प्रदीप जैन के मामले में इस वास्तविकता की पहचान की है, जब न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती ने टिप्पणी की- 'इतिहास का यह रोचक

तथ्य है कि राष्ट्र के रूप में भारत का निर्माण न तो एकसमान भाषा के आधार पर हुआ और न ही इसके भू-भाग पर एक राजनैतिक सत्ता के निरंतर अस्तित्व के कारण, बल्कि इसका आधार सदियों से विकसित हुई एक समान संस्कृति के कारण हुआ। यह एक सांस्कृतिक एकता है, देश के लोगों को एकजुट रखने वाले दूसरे बंधनों से ज्यादा मजबूत व आधारभूत, जिसने इस देश को राष्ट्र में पिरोया।'

इतिहासकार विसेंट स्मिथ लिखते हैं, 'बिना किसी संदेह के, भारत के पास अन्तर्निहित मूलभूत एकता है, जो राजनैतिक प्रभुता या भौगोलिक विगलन से ज्यादा शक्तिशाली है। यह एकता जाति, धर्म, वंश, रंग, भाषा व रीति-रिवाज की तमाम विभिन्नताओं को पार करती है। यह वेद काल से ही एक पवित्र घोषणा है- 'पृथिव्यै समुद्र पर्यन्तायाः एकराट।' यह अन्तर्निहित सांस्कृतिक एकता, हमारी राष्ट्रीय पहचान की सभ्यतामूलक आधार के साथ-साथ चरम जीवन मूल्य हैं। यह हमारे जीवन शैली की व्याख्या करते हैं और हमारी राष्ट्रीयता की आधारशिला है। अतएव राष्ट्रवाद, जिसका हम उद्घोष करते हैं, वास्तव में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है।

हमारी संस्कृति हमारे अस्तित्व को परिभाषित करती है, जैसा कि दीनदयाल जी ने कहा था, 'हमारी राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक सोच का आधार हमारी संस्कृति ही है।'

राष्ट्रवाद और पंडित दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन

प्रसिद्ध विचारक और प्रख्यात पत्रकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय अपने व्यस्त राजनीतिक जीवन से अनेक वर्षों तक ऑर्गनाइजर, राष्ट्रधर्म, पांचजन्य में 'पोलिटिकल डायरी' नामक स्तम्भ के अंतर्गत तत्कालीन राजनीतिक-आर्थिक घटनाक्रम पर गम्भीर विवेचनात्मक टिप्पणियां लिखते रहे। यद्यपि विषय तत्कालीन होता तो भी उस पर दीनदयाल जी की टिप्पणी सामयिक के साथ-साथ बहुधा दीर्घकालीन या स्थायी महत्व की भी होती थी। 'केन्या भी हमसे समझदार है!' में स्पष्ट है कि विदेशी वित्त से मुक्ति उतनी ही जरूरी है जितनी विदेशी खाद्यान्न से मुक्ति है। यह केवल राजनीतिक लक्ष्य ही नहीं, बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण भी है। मान भी लें कि विदेशी निवेश मददगार होता है, इसलिए जरूरी है तो भी हम विदेशी मदद पर निर्भरता अंधाधुंध नहीं बढ़ा सकते।' केन्या की सरकार के एक दस्तावेज 'अफ्रीकी समाजवाद और उसके समाजवाद पर प्रभाव' में उल्लेख है जो हमारे यहाँ के नीति नियामकों को समझनी चाहिए कि 'विकासशील राष्ट्र के तौर पर हमें अपने सभी विदेशी विनिमय संबंधी कार्यों और आती हुई मदद की समीक्षा करनी चाहिए। हमें ऐसे सभी देशों से आने वाली मदद को रोकना चाहिए, जो केवल इस उद्देश्य से भेजी जाती है ताकि हम उनके माल के लिए एक बाजार बने रहें।' हमें खुद भविष्य में कुछ चीजें खुद उत्पादन का लक्ष्य रखना चाहिए।

भारत को एक नई शुरुआत करनी पड़ेगी इस बात को मानते हुए लेख में वे स्पष्टता के साथ लिखते हैं कि फिर से वापस नहीं लौटा जा सकता अतः दुनिया के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना ही होगा लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि दासता के काल में आगामी विकृतियों को हम दूर करने का प्रयास न करें। वे लिखते हैं कि हम अपने जर्जर शरीर को रोगमुक्त करके जब तक स्वस्थ होकर खड़े हों तब तक बीच में ही कोई हमारे ऊपर हावी न हो जाए। साथ ही संसार के अनेक देशों के साथ हमारे संबंध रहे हैं। हमें अनेकों पुराने अप्राकृतिक संबंध तोड़ने पड़ेंगे, नवीन निर्माण करने होंगे।

अपने एकात्म मानववाद दर्शन के अंतर्गत उन्होंने राष्ट्र के चित्ति की अवधारणा को व्याख्यायित करने का निरंतर प्रयास किया। दीनदयाल जी चित्ति को राष्ट्र के अस्तित्व का मुख्य आधार मानते थे।

उनका मानना था कि 'भारत को बलशाली और वैभवशाली तभी बनाया जा सकता है, जब भारत की चित्ति को समझा जा सके चित्ति को बिना समझे राष्ट्र को समझना दुष्कर है तथा बिना राष्ट्र को समझे इसे बलशाली और वैभवशाली बनना असम्भव है।' इस प्रश्न को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं- हमारे राष्ट्र जीवन की चित्ति क्या है? हमारी आत्मा का क्या स्वरूप है? इस स्वरूप की व्याख्या करना कठिन है उसका तो साक्षात्कार ही संभव है, किंतु जिन महापुरूषों ने राष्ट्रात्मा का पूर्ण साक्षात्कार किया, जिनके जीवन में चित्ति का प्रकाश उज्ज्वलतम रहा है उनके जीवन की ओर देखने से, उनके जीवन की क्रियाओं और घटनाओं का विश्लेषण करने से, हम अपनी चित्ति के स्वरूप की कुछ झलक पा सकते हैं। प्राचीन काल से लेकर आज तक चली आनेवाली राष्ट्र पुरुषों की परंपरा के भीतर छिपे हुए सूत्र को यदि हम ढूँढ़े तो संभवतया चित्ति के व्यक्त परिणाम की मीमांसा से उसके अव्यक्त कारण की भी हमको अनुभूति हो सके।

जिन महान विभूतियों के नाम स्मरण मात्र से हम अपने जीवन में दुर्बलता के क्षणों में शक्ति का अनुभव करते हैं, कायरता की कृति का स्थान वीर व्रत ले लेता है, उनके जीवन में कौन सी बात है, जो हममें इतना सामर्थ्य भर देती है? कौन सी चीज है जिसके लिए हम मर मिटने के लिए तैयार हो जाते हैं? हमारा मस्तक श्रद्धा से किसके सामने नत होता है और क्यों? वह कौन सा लक्ष्य है जिसके चारों ओर हमारा राष्ट्र जीवन घूमता आया है? अपने राष्ट्र के किस तत्व को बचाने के लिए हमने बड़े-बड़े युद्ध किए? किसके लिए लाखों का बलिदान हुआ? किंतु भारत से तात्पर्य क्या जड़ भूमि से है? क्या हमने हिमालय के पत्थर और गंगा के जल की रक्षा की है? हमारे अवतारों ने किस हेतु जन्म लिया था? उनको हम भगवान् का अवतार क्यों कहते हैं? इस लेख में इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढते हुए वे अनेक वैचारिक प्रश्नों का साक्षात्कार पाठकों को कराते हैं।

हमारा धर्म हमारे राष्ट्र की आत्मा है। बिना धर्म के राष्ट्र जीवन का कोई अर्थ नहीं रहता। भारतीय राष्ट्र न तो हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैले हुए भू-खंड से बन सकता है और न तीस करोड़ मनुष्यों के झुंड से। एक ऐसा सूत्र चाहिए जो तीस करोड़ को एक-दूसरे से बाँध सके, जो तीस कोटि को इस भूमि में बाँध सके। वह सूत्र हमारा धर्म ही है बिना धर्म के भारतीय जीवन का चैतन्य ही नष्ट हो जाएगा, उसकी प्रेरक शक्ति ही जाती रहेगी। अपनी धार्मिक विशेषता के कारण ही संसार के भिन्न-भिन्न जन समूहों में हम भी राष्ट्र के नाते खड़े हो सकते हैं। धर्म के पैमाने से ही हमने सबको नापा है। दीनदयालजी राष्ट्र के समक्ष उपस्थित विभिन्न वैचारिक चुनौतियों के अंतर्गत द्विसंस्कृतिवाद तथा बहुसंस्कृतिवाद भी मानते हैं अपने लेख में वे भारत को एक संस्कृति वाला राष्ट्र मानते हैं अपने लेख 'राष्ट्रजीवन की समस्याएं' राष्ट्रधर्म में लिखते हैं- 'भारत में एक ही संस्कृति रह सकती है। एक से अधिक संस्कृतियों का नारा देश के टुकड़े-टुकड़े करके हमारे जीवन का विनाश कर देगा।' अतः आज लीग का द्विसंस्कृतिवाद, कांग्रेस का प्रच्छन्न द्विसंस्कृतिवाद तथा साम्यवादियों का बहुसंस्कृतिवाद नहीं चल सकता। आज तक एक-संस्कृतिवाद को संप्रदायवाद कहकर ठुकराया गया किंतु अब कांग्रेस के विद्वान भी अपनी गलती समझकर इस एक-संस्कृतिवाद को अपना रहे हैं। इसी भावना और विचार से भारत की एकता तथा अखंडता बनी रह सकती है तथा तभी हम अपनी संपूर्ण समस्याओं को सुलझा सकते हैं।

दीनदयाल जी के अनुसार भारत में चार प्रधान वर्ग दिखाई पड़ते हैं जिसकी व्याख्या उन्होंने निम्नवत् की है- अर्थवादी पहला वर्ग, अर्थवादी संपत्ति को ही सर्वस्व समझता है तथा उसके स्वामित्व एवं

वितरण में ही सब प्रकार की दुरावस्था की जड़ मानकर उसमें सुधार करना ही अपना एकमेव कर्तव्य समझता है। उसका एकमेव लक्ष्य 'अर्थ' है। साम्यवादी एवं समाजवादी इस वर्ग के लोग हैं। इनके अनुसार भारत की राजनीति का निर्धारण अर्थनीति के आधार पर होना चाहिए तथा संस्कृति एवं मत को वे गौण समझकर अधिक महत्व देने को तैयार नहीं हैं।

राजनीतिवादी दूसरा वर्ग है। यह जीवन का संपूर्ण महत्व राजनीतिक प्रमुख प्राप्त करने में ही समझता है तथा राजनीतिक दृष्टि से ही संस्कृति, मजहब तथा अर्थनीति की व्याख्या करता है। अर्थवादी यदि एकदम उद्योगों का राष्ट्रीयकरण अथवा बिना मुआवजा दिए जमींदारी उन्मूलन चाहता है तो राजनीतिवादी अपने राजनीतिक कारणों से ऐसा करने में असमर्थ है। उसके लिए इस प्रकार संस्कृति एवं मजहब का भी मूल्य अपनी राजनीति के लिए ही है, अन्यथा नहीं। इस वर्ग के अधिकांश लोग कांग्रेस में हैं जो आज भारत की राजनीतिक बागडोर सँभाले हुए हैं।

मतवादी तीसरा वर्ग, मजहब परस्त या मतवादी है। इसे धर्मनिष्ठ कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि धर्म मजहब या मत से बड़ा तथा विशाल है। यह वर्ग अपने-अपने मजहब के सिद्धांतों के अनुसार ही देश की राजनीति अथवा अर्थनीति को चलाना चाहता है। इस प्रकार का वर्ग मुल्ला-मौलवियों अथवा रूढ़िवादी कट्टरपंथियों के रूप में अब भी थोड़ा बहुत विद्यमान है, यद्यपि आजकल उसका बहुत प्रभाव नहीं रह गया है।

संस्कृतिवादी चौथा वर्ग है। इसका विश्वास है कि भारत की आत्मा का स्वरूप प्रमुखतया संस्कृति ही है। अतः अपनी संस्कृति की रक्षा एवं विकास ही हमारा कर्तव्य होना चाहिए। यदि हमारा सांस्कृतिक ह्रास हो गया तथा हमने पश्चिम के अर्थ प्रधान अथवा भोग प्रधान जीवन को अपना लिया तो हम निश्चित ही समाप्त हो जाएँगे। यह वर्ग भारत में बहुत बड़ा है। इसके लोग राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में तथा कुछ अंशों में कांग्रेस में भी हैं। कांग्रेस के ऐसे लोग राजनीति को केवल संस्कृति का पोषकमात्र ही मानते हैं, संस्कृति का निर्णायक नहीं। हिंदी वादी सब लोग इसी वर्ग के हैं।

जहां संस्कृतिवाद के दृष्टिकोण को सार्थक मानते हैं वही इसके विभिन्न स्वरूपों एवं समस्याओं के प्रति भी सचेत हैं। संस्कृति का स्वरूप कैसा हो इसमें कौन सा तत्व हो आदि विषयों पर हो रहे विवाद को भी वे एक समस्या ही मानते हैं, वे कहते हैं-

आज भी भारत में प्रमुख समस्या सांस्कृतिक ही है। वह भी आज दो प्रकार से उपस्थित है, प्रथम तो संस्कृति को ही भारतीय जीवन का प्रथम तत्व मानना तथा दूसरे यदि इसे मान लें तो उस संस्कृति का रूप कौन सा हो? विचार के लिए यद्यपि यह समस्या दो प्रकार की मालूम होती है, किंतु वास्तव में है एक ही। क्योंकि एक बार संस्कृति का जीवन को प्रमुख एवं आवश्यक तत्व मान लेने पर उसके स्वरूप के संबंध में झगड़ा नहीं रहता, न उसके संबंध में किसी प्रकार का मतभेद ही उत्पन्न होता है। यह मतभेद तो तब उत्पन्न होता है जब अन्य तत्वों को प्रधानता देकर संस्कृति को उसके अनुरूप उन ढाँचों में ढकने का प्रयत्न किया जाता है।

अंततः वे एक संस्कृतिवाद को ही उत्तम मार्ग मानते हैं तथा राष्ट्र के लिए आवश्यक तत्व बताते हैं वे लिखते हैं-केवल एक-संस्कृतिवादी लोग ही ऐसे हैं जिनके समक्ष और कोई ध्येय नहीं है तथा जैसा कि हमने देखा, संस्कृति ही भारत की आत्मा होने के कारण वे भारतीयता की रक्षा एवं विकास कर सकते हैं। शेष सब तो पश्चिम का अनुकरण करके या तो पूँजीवाद अथवा रूस की तरह आर्थिक प्रजातंत्र तथा राजनीतिक पूँजीवादी का निर्माण करना चाहते हैं। अतः उनमें सब प्रकार की संभावना होते हुए भी इस

बात की संभावना कम नहीं है कि उनके द्वारा भी भारतीय आत्मा का तथा भारतीयत्व का विनाश हो जाए। अतः आज की प्रमुख आवश्यकता तो यह है कि एक-संस्कृतिवादियों के साथ पूर्ण सहयोग किया जाए। तभी हम गौरव और वैभव से खड़े हो सकेंगे तथा भारत-विभाजन जैसी भावी दुर्घटनाओं को रोक सकेंगे।

15 अगस्त, 1947 को हमने एक मोर्चा जीत लिया। हमारे देश से अंग्रेजी राज्य विदा हो गया। उस राज्य के कारण हमारी प्रतिभा के विकास में जो बाधाएँ उपस्थित की जा रही थीं, उनका कारण हट गया, हम अपना विकास करने के लिए स्वतंत्र हो गए। अपनी आत्मानुभूति का मार्ग खुल गया। किंतु अभी भी मानव की प्रगति में हमको सहायता करनी है। मानव द्वारा छेड़े गए युद्ध में जिन-जिन शस्त्रों का प्रयोग हमने अब तक किया है, जिनके चलाने में हम निपुण हैं तथा जिन पर पिछली सहस्राब्दियों में जंग लग गई थी उन्हें पुनः तीक्ष्ण करना है तथा अपने युद्ध कौशल का परिचय देकर मानव को विजय बनाना है। आज यदि हमारे मन में उन पद्धतियों के विषय में ही मोह पैदा हो जाए, जिनके पुरष्कर्ताओं से हम अब तक लड़ते रहे हैं तो यही कहना होगा कि हम न तो स्वतंत्रता का सच्चा स्वरूप समझ पाए हैं और न अपने जीवन के ध्येय को ही पहचान पाए हैं।

निष्कर्ष

दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन शाश्वत विचारधारा से जुड़ता है। इसके आधार पर उन्होंने राष्ट्रभाव को समझने का प्रयास किया है। वे राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार कर उनका समाधान निकालते हैं। अन्य विचारों की भांति दीनदयाल उपाध्याय ने कोई वाद का निर्माण नहीं किया। एकात्म मानव, अन्त्योदय जैसे विचार वाद की श्रेणी में नहीं आते। एकात्म मानव एक जीवन दर्शन के रूप में है, जो मानव को अपनी संस्कृति और ऋषि परंपरा से जोड़ता है। इसके केंद्र में व्यक्ति या सत्ता नहीं है। बल्कि व्यक्ति, मन, बुद्धि, आत्मा सभी के महत्व को दृश्यांकित करता है। प्रत्येक जीव में आत्मा का निवास होता है। आत्मा को परमात्मा का अंश माना जाता है। इस साम्य में पारस्परिक समरसता का विचार है। इसमें भेदभाव नहीं है। व्यक्ति का अपना हित स्वभाविक हो सकता है लेकिन यही सब कुछ नहीं है। उपभोगवाद से लोक कल्याण कभी संभव नहीं रहा है। इसमें मानव का भी कल्याण निहित नहीं है। भौतिकवाद की दौड़ में कभी तो व्यक्ति को संतोष मिलता, लेकिन ऐसा नहीं होता। मन कभी संतुष्ट नहीं होता। मानव जीवन का लक्ष्य भौतिक मात्र नहीं है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का विचार भी ध्यान रखना चाहिये। सभी कार्य धर्म से प्रेरित होने चाहिये। अर्थात लाभ की कामना हो, लेकिन सभी का शुभ होना अनिवार्य है। यदि समाज का हित हो रहा हो तो परिवार का हित छोड़ देना चाहिये। देश का हित हो रहा हो तो समाज का हित छोड़ देना चाहिये। राष्ट्रवाद के अंतर्गत राष्ट्रप्रेम का यही विचार प्रत्येक नागरिक में होना चाहिये। एकात्म मानव दर्शन शाश्वत विचारों पर आधारित है। दीनदयाल जी ने संपूर्ण जीवन की रचनात्मक दृष्टि पर विचार किया। उन्होंने विदेशी विचारों को सार्वलौकिक नहीं माना। भारतीय संस्कृति, संपूर्ण जीवन व संपूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। यह एकात्मवादी है। यहाँ टुकड़ों-टुकड़ों में विचार संभव नहीं हो सकता। संसार में एकता का दर्शन, उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचानना, उनमें परस्पर अनुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही संस्कृति है। भारतीय संस्कृति में एकात्म मानव दर्शन है। मानव केवल एक व्यक्ति मात्र नहीं है। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। समाज व सम्पूर्ण जनता तक उसकी भूमिका होती है।

संदर्भ एवं ग्रंथ सूची

- डॉ. जैन, संजीव. प्राचीन भारतीय संस्कृति. भोपाल - कैलाश पुस्तक सदन.
- डॉ. मालवीय, चिंतामणि. पं. दीनदयाल उपाध्याय दर्शन और दार्शनिक. मध्य प्रदेश - म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी.
- डॉ. शर्मा, महेशचंद्र. (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय. दिल्ली - प्रभात प्रकाशन.
- दीक्षित, हृदय नारायण. सांस्कृतिक अनुभूति, राजनीतिक प्रतीति. वाराणसी - विश्व विद्यालय प्रकाशन.
- मिश्र, विद्यानिवास. भारतीय संस्कृति के आधार. नई दिल्ली - प्रभात प्रकाशन.
- सिंह, रामधारी'दिनकर'. संस्कृति भाषा और राष्ट्र. नई दिल्ली - लोकभारती प्रकाशन.
- सिंह, रामधारी'दिनकर'. हमारी सांस्कृतिक एकता. नई दिल्ली - नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
- सिन्हा, सच्चिदानंद. सांस्कृतिक विमर्श. बीकानेर - वाग्देवी प्रकाशन.
- www.sanskritikrashtravad.com
- www.sumansourabh.blogspot.com

1. http://www.nationalistonline.com/2016/09/24/pandit&deendayal & upadhyaya&was&a&cultural&precursor&in&indian&politics/ यह वेबसाइट 14. 11.17 को देखी गयी।
2. 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अर्थ' लेखक प्रो. बाल आप्टे http://bharatshri-blogspot-in/2010/06/ blog&post_6131-html
3. अशोक मेहता की 'नई रणनीति' दीनदयाल सम्पूर्ण वाङ्मय (खंड तेरह) पृष्ठ संख्या -71
4. वही पृष्ठ-72
5. राष्ट्रधर्म समाचारपत्र, 21 मार्च, 1945
6. राष्ट्रधर्म समाचारपत्र, 21 नवंबर, 1944